डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या कवि के रूप में

— डा० सत्यव्रत शास्त्री

डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या उन विद्वानों में हैं जिन पर समस्त विश्व को गर्व है। उनका वैदुष्य अगाध है। वे विश्व के मूर्धन्य भाषा शास्त्री हैं। एक प्रमुख भाषाविद् के शब्दों में वे भाषा शास्त्र के भीष्म पितामह हैं। पर वे केवल भाषा-शास्त्री ही नहीं, साहित्य-शास्त्री भी हैं। वे प्रखर आलोचक भी हैं और सर्जनात्मक साहित्यकार भी। वे मौलिक चिन्तक भी हैं और प्राचीन विचारधारा के व्याख्याता भी। वे मानविकी भाषाओं के आचार्य भी हैं और सुमधुर कवि भी। इसमें क्या आश्चर्य कि इन विभिन्न तत्वों के सम्मिश्रण से बना उनका व्यक्तित्व वर्तमान युग के लिये एक आश्चर्य की वस्तु बन गया है।

डा. चाटुर्ज्या की कविताएं भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित होती रही हैं। संस्कृत श्लोक रचना में वे सिद्धहस्त हैं। विषय-निरूपण के आधार पर उनके श्लोकों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) प्रशस्ति श्लोक, (२) भाषणों व ग्रन्थों के आदि विषयावतार अथवा उपसंहार रूप श्लोक, (३) आशीर्वाद अथवा शुभकामना श्लोक, (४) स्वतन्त्र विषयों पर श्लोक।

डा, चाटुर्ज्या में कवि प्रतिभा सहज है। उनके श्लोकों में प्रसाद गुण है, एक प्रांजलता है जो हृदय को छू छू जाती है। प्रस्तुत लेख में उनके इन काव्यात्मक श्लोकों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

सिख सम्प्रदाय के दशम गुरू श्री गुरू गोविन्दसिंह जी की त्रिशताब्दी पूर्ति के अवसर पर सितम्बर १९६६ में पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, द्वारा प्रकाशित एक विशेष ग्रन्थ में डा. चाटुर्ज्या ने श्री गुरू गोविन्दसिंह श्लोक षोडशी शीर्षक से सोलह श्लोकों में भारत की महान् विभूति श्री गुरू गोविन्द सिंह को अपने श्रद्धा के प्रसून अर्पित किये थे। अनुष्टुभ् छन्द में उपनिबद्ध ये सभी के सभी श्लोक भक्ति-भाव से ओतप्रोत हैं। गुरुगोबिन्दसिंह का व्यक्तित्व और कृतित्व संक्षेप में इनमें मूर्त हो उठा है। गुरुगोविन्दसिंह ने मुगलों के अत्याचार का प्रतिकार करने के लिये इदम्प्रथमतया सिख सम्प्रदाय को क्षात्र धर्म में दीक्षित किया था, उन्हों ने निष्प्राण राष्ट्र में प्राण फूंके थे, वे गीता के कर्मयोग के मूर्तिमान् स्वरूप थे, वे गुरु थे, कवि थे, नवीन सिख पन्थ के प्रवर्तक थे, दुष्टों के दमन के लिये उन्होंने आत्म सुख की कभी चिन्ता न की थी, स्वधर्म की रक्षा के लिये पुत्र, धन, सुख सभी को हंसते हंसते उन्हों ने न्योछावर कर दिया था :—

क्षात्रवीर्यावताराम गीता धर्मैकमूर्तये ।
प्राणसञ्चारिणे तेभ्यो येऽभवन् प्राणरहित : ॥
गुरवे कवये चैव ज्ञानभक्तिप्रकाशिने ।
ऋषये हि नवीनाय लोकधर्मविधोषिणे ॥
दुष्टदमनकर्मणि निर्जितात्मसुखाय च ।
श्रीमद्गोविन्दसिहाय नवशैक्ष्यप्रवर्तिने ॥
स्वधर्मसिद्धये येन पुत्रभाग्यं धनं सुखम् ।
हेलया वै परित्यक्तं तस्मै सदा नमो नम: ॥

गुरु गोविन्वसिंह ने पंचम गुरु द्वारा सङ्कलित गुरु ग्रन्थ साहब का परिष्कार भी किया था। डा. चाटुर्ज्या ने इस तथ्य का भी अपने श्लोकों में उल्लेख किया है :—

नवस्यैतस्य वेदस्य शोधनं कृतवानसौ ।

डा. चाटुर्ज्या ने कहा है कि अरब में मुहम्मद नाम के एक धर्मसंस्थापक गुरु हुए थे। पारसी, पठान, तुर्क और मंगोल लोगों ने उनका धर्म अंगीकार कर भारत पर आक्रमण किया। न्यायधर्म का परित्याग कर उन्होंने प्रजा पर अत्याचार करने प्रारम्भ किये, स्त्रियों का उन्हों ने अपहरण किया, धन लूटा, वेदप्रोक्त धर्म का नाश किया, प्रजा पर नाना प्रकार के कहर उन्होंने

ढाये। डा. चाटुर्ज्या ने इन अत्याचारों का वर्णन मात्र एक अनुष्टुप् श्लोक में कितने सजीव ढंग से किया है :—

> हरन्तो वै स्त्रियो वित्तं धर्मं च वेददेशितम् ।
> बहुशस्ते प्रजानां हि सञ्जाता आततायिनः ॥

उनके इन अत्याचारों के प्रतिकार के लिये ही दक्षिण में छत्रपति शिवाजी और पंजाब में गुरुगोविन्दसिंह ने जन्म लिया था :—

> मद्रेऽभूद् गुरुगोविन्दः शिवो राजेव दक्षिणे ।

डा. चाटुर्ज्या ने श्री गुरुगोविन्दसिंह प्रशस्ति की परिसमाप्ति गुरुगोविन्द सिंह को प्रणामाञ्जलि अर्पित करते हुए की है। इसमें उन्होंने उन्हें योगीन्द्र और लोकतारण कहा है :—

> योगीन्द्रं तं गुरुं नौमि गोविन्दं लोकतारणम् ॥

अभी हाल में ही डा. चाटुर्ज्या की गुरुनानक देव प्रशस्ति प्रकाशित हुई है जिसमें २१ श्लोकों में गुरु नानक के प्रति श्रद्धांजलि, उनके उपदेश, उनके पिता और पुत्रों के नाम का निर्देश, पंचम गुरु अर्जुन देव द्वारा गुरु नानक एवं अन्य गुरुओं की वाणी का गुरु ग्रन्थ के रूप में संकलन एवंच दशम गुरु गोविन्दसिंह द्वारा सिख सम्प्रदाय में क्षात्र धर्म का समावेश इन सबका बहुत ही ललित संस्कृत में संक्षेप में वर्णन है। गुरु नानक को अपनी श्रद्धा के प्रसून अर्पित करते हुए डा. चाटुर्ज्या कहते हैं :–

> ब्रह्मनामैकमूर्तिं तं ब्रह्मज्ञानप्रकाशकम् ।
> प्रशान्तमनसं सौम्यमीशभक्तिनिकेतनम् ॥
> नानकं तमृषिं नौमि शैक्ष्याम्नायस्य सद्गुरुम् ।

"मैं प्रशान्तमना, सौम्य, ईशभक्तिपरायण सिख सम्प्रदाय के श्रेष्ठ गुरु नानक नामक ऋषि की स्तुति करता हूं।"

गुरु नानक ने ज्ञान-भक्ति समन्वित ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया था :—

> ब्रह्मविद्या गुरु श्रेष्ठो ज्ञानभक्तिसमन्विताम् ।
> अशिषन्नानको लोके भावशुद्धां शुभकरीम् ॥

गुरु अर्जुनदेव द्वारा पूर्व गुरुओं की वाणी का संग्रह कर गुरु ग्रन्थ के निर्माण की घटना को डा. चाटुर्ज्या ने इन शब्दों में वर्णित किया है :—

नामकाम्नायसञ्जातः पञ्चमो गुरुरर्जुनः ।

नानकादिगुरूणां वै सूक्तानि संगृहीतवान् ॥
एवं संकलिता तेन नवीना वेदसंहिता ।
गुरुग्रन्थ इति प्रोक्ता नराणां भक्तिदायिनी ॥

कलकत्ता के सुप्रसिद्ध साहित्य एवं संगीतकार श्री दामोदर दास खन्ना के तैलचित्र के अनावरण के अवसर पर मार्च ३०, १९६२ को डा. चाटुर्ज्या ने स्तुतिगीत के रूप में उनके विषय में १२ श्लोक लिखे थे जिनमें उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति डा. साहब ने श्रद्धांजलि अर्पित की थी । उन्होंने कहा था :—

भासयति जगत्कृत्स्नं सुकृती धर्मदेशिकः ।
विद्यासंस्कृतिसम्पन्न आचार्यो लोकवन्दितः ॥
क्षत्रकुलसमुद्भूतो दामोदरो जनप्रियः ।
लालाबाबुरितिख्यातः शुभाग्रही सुकर्मसु ॥
धीमान् विचक्षणो वाग्मी गन्धर्व इव गायने ।

ऋषिपंचमी के दिन महाराष्ट्र के मूर्धन्य विद्वान डा. रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर की बत्तीसवीं निर्वाण तिथि के अवसर पर २९ अगस्त, १९५७ को डा. चाटुर्ज्या ने "इण्डियनिस्म एण्ड संस्कृत" (भारतीयता एवं संस्कृत) इस विषय पर पूना में एक भाषण दिया था जोकि बाद में "एनल्स् आफ दि भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिच्यूट" के उसी वर्ष के अंक में प्रकाशित हुआ था । भाषण अंग्रेज़ी में था पर इसकी पूर्वपीठिका के रूप में डा. चाटुर्ज्या ने संस्कृत के पन्द्रह श्लोक पढ़े थे जिनका शीर्षक उन्होंने ऋषिपंचमी श्लोक पंचदशी दिया था । इसमें उन्होंने डा. भाण्डारकर को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है :—

पुण्यायामृषिपंचम्यां तिथौ श्रद्धांजलिर्मया ।
कश्यपान्वयजातेन कालीक्षेत्रनिवासिना ॥
सुनीतिशर्मणा मन्दबुद्धिना दीयते वै ।

उन्होंने कहा है यद्यपि उन्हें डा. भाण्डारकर से साक्षात् विद्याध्ययन का अवसर नहीं प्राप्त हुआ तो भी वे एकलव्य की तरह उन्हें अपना गुरु मानते हैं :—

यथा विद्यैकलव्येन द्रोणशिष्येण साधिता ।
तथा स श्रद्धमनसा दर्शनेन विना गुरोः ।।
साधिता शिष्यकल्पेन गौडीयेन सुनीतिना ।

प्रस्तुत श्लोकों में डा. चाटुर्ज्या ने डा. भाण्डारकर को ऋषिकल्प, अनूचान एवं युगप्रवर्तक कहा है :—

ऋषिकल्पमनूचानं तं युगस्य प्रवर्तकम् ।

प्रारम्भिक श्लोकों में डा. चाटुर्ज्या ने प्राचीन और नवीन सभी ज्ञानियों, ऋषियों और धर्मप्रवर्तकों को प्रणाम किया है :—

केनापि ऋषिवर्याणां नानृण्यं गम्यते खलु ।
तथापि ज्ञानिनो नित्यमृषीन् धर्मप्रवर्तकान् ।।
शिवसङ्कल्पमनसः संस्कृतेः स्थापकांस्तथा ।
पूर्वांश्च नूतनान् सर्वान् श्रद्धावान् प्रणमाम्यहम् ।।

उपसंहार श्लोकों में डा. चाटुर्ज्या ने भाषण के विषय का निर्देश करते हुए कहा है कि संस्कृत की महिमा, भारत के ज्ञान, विद्वानों द्वारा भारतीय धर्म संज्ञा से उल्लिखित ऋषिप्रोक्त भारतीय मार्ग विषय पर गुरु वर्य डा. भाण्डारकर के निर्देश का स्वज्ञानानुसार पालन करते हुए वे इस पण्डित सभा में कुछ कहने के लिए आए हैं। उनका पण्डितों से निवेदन है कि यद्यपि उनका आलोचनात्मक वक्तव्य संक्षिप्त है तो भी वे उसे सुनें और उसमें जो भ्रम और प्रमाद हों, उन्हें क्षमा करें :—

गुरुवर्यस्य निर्देशं यथाज्ञानं प्रपालयन् ।
संस्कृतस्य च माहात्म्यं प्रस्थानं भारतस्य च ।।
यत्तु भारतयानं नो ऋषिदिष्टं पुराऽभवत् ।
भारतं धर्ममिति यत् कीर्तयन्ति विपश्चितः ।।
एतद्विषयमाश्रित्य गुरोर्निर्याणवासरे ।
पण्डितानां सदस्यस्मिन् विज्ञप्तिं कर्तुमागतः ।।
शृण्वन्तु विबुधाः सर्वे यद्यप्यालोचनं लघु ।
भ्रमांस्तथा प्रमादांश्च मर्षयन्तु मनीषिणः ।।

सितम्बर-अक्तूबर १९६६ को सोवियत संघ के जियोर्जिया प्रदेश की राजधानी तिफ्लिस् अथवा ट्विलिसी में जियोर्जिया के राष्ट्रकवि शोथ रुस्थावेली

की आठ सौवीं वर्षगांठ मनाई गई थी। उस अवसर पर रूस की सरकार के अनुरोध पर डा. चाटुर्ज्या भी वहां उपस्थित थे। उन्होंने समारोह के उद्घाटन के अवसर पर अंग्रेजी अनुवाद सहित सोलह श्लोक अपनी श्रद्धांजलि के रूप में वहां पढ़े थे। इनमें प्रथम श्लोक स्रग्धरा में है, दूसरा उपेन्द्रवज्रा में और शेष अनुष्टुभ् में। जियोर्जिया का स्थानीय नाम सखर्थवेल है। डा. चाटुर्ज्या ने कविता में इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने इसे फल और शस्य से प्रपूरित एवं सोवियत राष्ट्र संघ का अग्रगण्य देश कहा है :—

देशोऽयं सखर्थवेलो फलशस्यप्रपूरितः।
सोवियेत्सङ्घराष्ट्रस्य पुरतो विद्यते किल ॥

वहां के नवयुवक शूरवीर हैं, वहां की स्त्रियां रूप और गुणों के कारण हृदय को भाती हैं और अप्सराएं सी लगती हैं : —

युवानश्चात्र वै शूराः सुवीराः सुनराश्च ते।
देवकन्या इव स्त्रियो रूपगुण मनोरमाः ॥

वहां के सभी के सभी लोग अपने अपने काम में लगे रहते हैं, नाच-गाना उनका जीवन है, आतिथ्य धर्म में वे निष्णात हैं, वे साक्षात् सौजन्य की मूर्ति हैं :—

स्वकर्मनिरताः सर्वे नृत्यगीतपरायणाः।
आतिथ्यधर्मनिष्णाताः सौजन्यमूर्तश्च वै ॥

तिफलिस् अथवा त्बिलिस् नगर में एक ऊंची पहाड़ी के पास मातृभूमि जियोर्जिया के प्रतीक रूप में "खर्थलिस् देदा" खर्थली (=जियोर्जिया) माता की देदीप्यमान श्वेत धातु से बनी एक प्रतिमा है जोकि नगर के हर भाग से दिखाई दे जाती है। इस प्रतिमा में खर्थली माता के बायें हाथ में द्राक्षारस का प्याला है और दायें में तलवार। एक सुखसमृद्धि का प्रतीक है (खर्थली अथवा जियोर्जिया अपनी अंगूरों की खेती के लिये सुप्रसिद्ध है) और दूसरा शत्रुनाश का :—

दधाना वै करे सव्ये पात्रं द्राक्षारसाप्लुतम्।
दक्षे हस्ते कृपाणं च जनशत्रुनिषूदनम् ॥

खर्थली माता को डा. चाटुर्ज्या ने युग-युग से प्राचीन और नवीन कहा है :—

सा देवी खर्थली माता स्वतनुजप्रपालिनी।
विजयतां भुवि धन्या प्रत्ना नव्या युगे युगे ॥

उसी खर्थली [illegible] (जियोर्जिया) के त्विलिस् नगर में शोथ कवि के महान् काव्य का पण्डित लोग सदैव पाठ किया करते हैं :—

पुरे सखर्थवेलस्य त्विलिसि नगरे शुभे ।
शोथकवेर्महत्काव्यं सदा पठन्ति पण्डिता: ।।

जियोर्जिया के नागरिक वरस्त जाति के थे । डा. चाटुर्ज्या ने वरस्त शब्द का संस्कृत रूपान्तर करते हुए उन्हें वारक कहा है । शोथ कवि इन्हीं वरकों का अत्यन्त प्रिय कवि था (वरकाणां जनप्रिय:) । उसने लोककल्याण का कार्य किया था (लोकहितं कृतम्) और पृथ्वी पर अमरता प्राप्त की थी (अमरत्वं भुवि तेन प्राप्तम्) । वह कवि था, मनीषी था, कवियों का पथिकृत् (मार्ग निर्माता) था, धैर्यवान् था :—

कविर्मनीषी पथिकृत् कवीनां,
सखर्थवेलप्रभव: सुधीर: ।

कवि का नाम शोथ था । रुस्थावेली उसकी कुलपदवी थी । उसने क्षात्र धर्म में निष्णात, मित्रों के सच्चे मित्र, वरक जनों के मनभाते तायॆल नामक शूरवीर को कीर्ति का अपने काव्य के माध्यम से गान किया था :—

क्षात्रे धर्मे प्रणिहितमना मित्र दत्तैकचित ,
स्तार्येलाख्यो वरकजनचितोत्थितो य: सुधीर: ।
तत्कीर्तेस्तु ग्रथनमकरोत्काव्यमुख्ये पृथिव्यां ,
रुस्थावेलीति कुलपदवीमान् कवि: शोथनामा ।।

प्रशस्ति के अन्तिम श्लोक में डा. चाटुर्ज्या ने कामना की है कि वरक (जियोर्जिया के नागरिक) और भारतीय अपने चित्त के प्रसार एवञ्च विश्वजन के हित के लिये प्रीतिसूत्र में बंध जायें :—

प्रीतिसूत्रग्रथिता: स्यु: सर्वे वरकभारता: ।
स्वचित्तस्य प्रसाराय विश्वजनहिताय च ।।

फरवरी १६६७ में डा. चाटुर्ज्या ने इम्फाल (मणिपुर) में पण्डितराज आतोम् बापु भाषण दिये थे । उनके प्रारम्भ में १० श्लोकों में उन्होंने पण्डितराज आतोम् बापु शर्मा का स्तुतिगान किया है । उन्हों ने उन्हें नवीन ऋषि कहा है :—

नवीनं तमृषिं नौमि ध्यानयोगपरायणाम् ।

सर्वधर्मसमन्वय पण्डितराज का मौलिक सिद्धान्त था :—

सर्वधर्मसमावेशो यस्यासीन् मौलिको नयः ।

मणिपुर में हिन्दू धर्म के प्रवेश से पूर्व मैंबास् और मैंवासी नामक नर एवं नारी धर्मप्रचारक हुआ करते थे जिन्होंने वहां की संस्कृति को सुपुष्ट किया था। उन्हीं की परम्परा में हुए श्रो आतोम् बापु जिसका अर्थ है लघू विप्र उन्होंने पूर्व दिशा में कल्याणमय अत्यन्त अद्भुत कार्य किया। उन्होंने लोगों को आर्य शास्त्रों की शिक्षा भी दी जोकि लोकभाषा की सहायक थी :—

प्राच्याँ तेन कृतं कर्म कल्याणमयमद्भुतम् ।
शिक्षणं चार्षशास्त्राणां लोकभाषासहाहकम् ।।

श्री आतोम् बापु भक्त भी थे और ज्ञानी भी। उनके सत्यप्रयत्नों से ही राष्ट्रीय भावना उनकी जाति में सुदृढ़ हुई थी :—

राष्ट्रीया भावना चैव निःश्रेयससुसाधना ।
भक्तेत ज्ञानिना येन स्वजातौ सुदृढ़ा कृता ।।

कांचीकामकोटिपीठाधीश्वर श्री स्वामी शंकराचार्य जी की प्रेरणा से १-९, जून, १९६९ को मद्रास में आयोजित शांकरषण्मतम् सम्मेलन के अवसर पर डा० चाटुर्ज्या ने अंग्रेजी में कौमारमतम् नामक भाषण दिया था। भाषण के प्रारम्भ में स्वरचित तेरह श्लोकों का पाठ किया था। इनमें सर्वप्रभम शंकराचार्य जी को प्रणाम किया गया है। तदनन्तर कहा गया है कि मनुष्यों की शिक्षा और रुचि के भेद से असंख्य देवता माने जाते हैं। मुमुक्षुजन भक्ति और श्रद्धा से प्रेरित होकर उन देवबिम्बों का आश्रय लेते हैं और सिद्धि प्राप्त करते हैं :—

असङ्ख्यानि मनुष्येणु शिक्षारुचिप्रभेदतः ।
दृश्यन्ते देवरूपाणि देशे देशे युगे युगे ।।
भक्तिश्रद्धाप्रणोदिता भावशुद्धा मुमुक्षवः ।
देवबिम्बान् समाश्रित्य सिद्धि विन्दन्ति मानवा ।।

इसके पश्चात् षट् देवों का उल्लेख है एवंच शंकराचार्य द्वारा ज्ञानमार्ग के माध्यम से अद्वैतसिद्धि एवंच भक्तिमार्ग के माध्यम से षण्मत का प्रतिपादन है :—

भारते कल्पिता देवा प्राक्कालात् मुख्यतो हि षट् ।
शिवोमास्कन्दविष्णवो गणेशो भास्करस्तथा ।।
अधुनैतान् समालम्ब्य षण्मतं वै प्रतिष्ठतम् ।
एतेभ्यः प्राप्यते श्रेय इति श्रीकृष्णदेशना ।।
ज्ञानपथेन शङ्करोऽद्वैतसिद्धिमभाषत ।
भक्तिमार्गेण तद्वत् षण्मतमन्वमोदयत् ।।

इसके पश्चात् डा० चाटुर्ज्या ने सभा में उपस्थित विद्वानों का उल्लेख करते हुए कहा है कि उनके वचनों से विद्वानों का प्रमोद एवं विश्व के लोगों का हित होगा। तदनन्तर देवताओं से प्रार्थना करते हुए उन्होंने स्कन्द के अनेक नामों एवं कृत्यों की चर्चा की है और कहा है कि मै उसका चरित वर्णन करने का प्रयत्न करूंगा। डा० चाटुर्ज्या ने इस सन्दर्भ में यह भी कहा है कि कृपया मुझ मन्दमति का यह दुराग्रह क्षमा किया जाय। डा० चाटुर्ज्या वैदुष्य का अपार सागर होते हुए भी कितने नम्र हैं। "विद्या ददाति विनयम्" का इससे सुन्दर उदाहरण और क्या हो सकता है—

सुब्रह्मराय: कुमारश्च शक्तिधरो सुराहवे ।
पापाशुभनिवारको ब्रह्मज्ञानप्रदायक: ।।
पुण्यां तस्य कथां वक्तुं यतिष्ये स्वल्पश्रीरहम् ।
मन्दमतेर्दुराग्रह: क्षन्तव्य: कृपया बुधैः ।।

अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'इण्डो-आर्यन एण्ड हिन्दी' के प्रारम्भ में डा० चाटुर्ज्या ने ११ श्लोक दिए हैं जिनमें प्रथम स्रग्धरा में, द्वितीय और तृतीय शार्दूलविक्रीडित में, चतुर्थ शिखरिणी में, पंचम पुनः शार्दूलविक्रीडित में, षष्ठ वसन्ततिलका में, सप्तम, अष्टम, नवम और दशम अनुष्टुप् में और एकादश मालिनी में हैं। इनमें डा० चाटुर्ज्या ने आर्य भाषा संस्कृत को गंगा के समान एवंच अलक्ष्यमूला कहा है। कवि, मुनि और विद्वज्जनों के ज्ञान के आलोक से यह आलोकित हो रही है। पालि, आर्ष आदि इसके प्राचीन एवंच हिन्दी आदि इसके नवीन रूप हैं—

आर्या वाणी सुरसरिदियं संस्कृताऽलक्ष्यमूला
जम्बूद्वीपे कविमुनिबुधज्ञानदीप्त्या लसन्ती ।
पाल्यार्षाद्याः प्रकृतिकलिता रूपभेदाः पुरास्या
हैन्दव्याद्या नवतमगिरो भारती हृत्प्रकाशाः ।।

'इ[illegible]' [illegible] अहमदाबाद की गुजरात वर्नैकुलर सोसाइटी के तत्त्वावधान में दिए गये भाषणों का संग्रह है। डा० चाटुर्ज्या ने सोसाइटी के कार्यकलाप की प्रस्तुत श्लोक में भूरि-भूरि सराहना की है—

भद्राशानगरं यदहमदनृपस्यासीत्प्रतीच्यां पुरि
तत्रास्ते परिषच्च गूर्जरगिरस्सभ्यवप्रकर्षावहा।
यतो भारतसंस्कृतेः प्रसरतीहालोचनं नूतनं
वैदग्ध्यं त्वनुशीलनं च विदुषां सौख्याय यस्यास्सदा ॥

१९६९ में डा- चाटुर्ज्या का एक लेख 'वेद संहिता बाल्टिका' शीर्षक से पेरिस से प्रकाशित हुआ था जिसके अन्त में उपसंहार रूप में १२ श्लोक हैं। उनका शीर्षक उन्होंने "भटिकी वेदसंहिता" दिया है। श्वेतार्थक बाल्ट शब्द लिथुएनी का बल्तस् और लैट्वी का बल्तस् है जिसका उद्भव सम्भवतः भारोपीय दीप्त्यर्थक धातु भा से हुआ जिसका कि ल् (भ-ल्) अथवा ल्-त् (भल्त्) द्वारा उपबृंहण कर दिया गया। यही शब्द फार्चुनेटोव् नियम द्वारा भारतीय आर्य भाषाओं में भट, भट्ट या भाट रूप में परिवर्तित हो गया। इस बाल्त् के समकक्ष रूप भट का डा० चाटुर्ज्या ने उपसंहार श्लोकों के शीर्षक के रूप में में प्रयोग किया है। डा० चाटुर्ज्या का मत है कि प्रागैतिहासिक काल में लगभग ३००० वर्ष ईसा पूर्व आर्य जाति ऊरल पर्वत शृंखला के दक्षिण में रहती थी। वहीं से उनकी एक शाखा पूर्व की ओर और दूसरी पश्चिम की ओर चल दी। भारोपीय जाति की एक स्पष्ट शाखा के रूप में बाल्त् लोग बाल्त् समुद्र के किनारे-किनारे अथवा मध्य रूस में बस गये। उनके लोक साहित्य में इस प्रकार के अनेक ऐसे तत्त्व हैं जिनसे प्रागैतिहासिक भारोपीय जनजीवन का बहुत कुछ पता चल जाता है। जैसे भारत का वैदिक वाङ्मय प्रागैतिहासिक भारोपीय जनजीवन के अध्ययन के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है उसी प्रकार बाल्तिक जनसाहित्य भी। इसीलिए डा० चाटुर्ज्या ने उसे भटिकी अथवा बाल्तिक वेदसंहिता अथवा लैटिन के नवनिर्मित शब्द द्वारा वेदसंहिता बाल्तिका कहा है। लिथुएनी एवं लेट्वी में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें देना कहा जाता है। डा० चाटुर्ज्या के मत में 'देना' शब्द वैदिक 'धेना' का ही रूपान्तर है। बहुत सी 'देना' तो संस्कृत श्लोकों की भांति चार पंक्तियों की भी हैं। पर बारह या सोलह पंक्तियों की 'देना' भी पाई जाती हैं। लैट्वी का जनसाहित्य लिथुएनी जनसाहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्ध है। अब तक लैटवी और लिथुएनी के जनसाहित्य के

२३०९००० गीत एवं गद्यांश संगृहीत किये जा चुके हैं। जिनमें ७७५२५७ गीत हैं। यह विशाल सामग्री वेदसंहिता के समान ही भारोपीय काल के इतिवृत्त के लिये उपयोगी सामग्री से भरपूर है। भारतीय वेद और यह भटिकी वेदसंहिता (बाल्तिक जनसाहित्य) भारोपीय जनजीवन के चित्र के लिये एक दूसरे के पूरक सिद्ध हो सकते हैं :—

> सर्वे वेदा ऋषिप्रोक्ता भारतस्य सनातनाः।
> धेनाश्चार्यभटानां च पूरयन्तु परस्परम् ॥
> संहिते विराजेतां भारतस्य श्रुतिः सदा।
> भटजनस्य वै तद्वद् भटिकी वेदसंहिता ॥

डा. चाटुर्ज्या के आशीर्वादात्मक एवं शुभकामनात्मक श्लोकों में डा. सुकुमार सेन एवं श्री प्रमथनाथ बीसी विषयक श्लोकों का उल्लेख किया जा सकता है। अपने छात्र डा. सुकुमार सेन के विषय में उन्हों ने कहा था : –

> सत्साहित्यविचारनिष्ठितमना वैदग्ध्यधीरः सदा
> वाक्तत्त्वे पटुता भुवि प्रविदिता श्रद्धा च विद्वज्जने।
> ज्ञानोत्पूततरं न वेत्ति विषयं लोकेषु पथ्यं शुभम्
> शिष्यो मे सुकुमारसेन इति स्याल्लब्धव्यनैःश्रेयसः ॥

"मेरे शिष्य सुकुमारसेन का सदा कल्याण हो। भाषा शास्त्र में इनकी पटुता एवं विद्वज्जनों के प्रति श्रद्धा लोकविदित है। वैदुष्यजन्य धैर्य इनमें है, सत्साहित्य गत विचार इनमें स्थिर हैं। ज्ञान से बढ़कर और कोई पवित्र, हितकारी एवं शुभ चीज़ इनके लिये नहीं है।"

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध बंगाली लेखक एवं मनीषी श्री प्रमथनाथ बीसी की पैंसठवीं वर्षगांठ के अवसर पर उन्होंने अपने उद्गार इन शब्दों में व्यक्त किये थे :—

> कविर्धीमान् प्राज्ञो रसिकजनमान्यः परिषदि,
> कथाशास्त्रे योऽसौ प्रकटितयशाश्चित्रचरितः।
> मुनीनां वै भ्रान्तौ विमलपरिहासोज्ज्वलरुचि-
> विदग्धानां मूर्ध्नि प्रमथविषयी राजति सदा ॥

"श्री प्रमथ(नाथ) बीसी कवि, बुद्धिमान् मनीषी एवंच विद्वानों में सदा अग्रगण्य हैं। सभा में रसिकजन इनका सम्मान करते हैं, इनका चरित्र विचित्र

है, कथा लेखन में इनका यश सुप्रथित है, मुनि-जनो की भ्रान्तियों पर इनकी (मुख) कान्तिमण्डल परिहास से उज्ज्वल हो उठती है।

कतिपय विशेष अवसरों पर डा. चाटुर्ज्या ने मंगल श्लोक भी भेजे थे जिनमें विशेष उल्लेखनीय हैं उनके असम साहित्य सभा के नव भवन के उद्घाटन के अवसर पर लिखे गये श्लोक :—

आर्यवाणीदुहितेयं भाषा प्राग्ज्योतिषोद्भवा ।
माता नः कामरूपिणी मुदा स्याच्छ्रेयसे नृणाम् ।।
सभैषाऽसमसाहित्यसंस्कृतिसंविवर्धिनी ।
नवीनं सदनमस्या रक्षतु तां सदा मुदा ।।

एवं च ब्रेल लिपि में पुस्तक प्रकाशनार्थ प्रारम्भ किये गये देहरादून ब्रेल मुद्रणालय के उद्घाटन के अवसर पर लिखे गये श्लोक :—

स्याल्लिपिर्भारती ब्राल्या बिन्दुमती सुखावहा ।
प्रज्ञानेत्रान् विदधातु नेत्रहीनांश्च सर्वदा ।।
काश्यपस्य सुनीतेस्तु सफलेयं भवेदीहा ।

विशेष उल्लेखनीय हैं ।

डा. चाटुर्ज्या ने ३० श्लोकों की "संस्कृतदिग्विजयः" शीर्षक कविता भी लिखी है जोकि कलकत्ता की संस्कृत पत्रिका मंजूषा के चतुर्थ वर्ष के दशम अंक में प्रकाशित हुई है । इसमें मध्य एशिया से लेकर योरुप तक संस्कृत के प्रचार का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्णन है । इस प्रकार की अपने ढंग की यह पहली कविता है । डा. साहब ने अनेक विदेशी शब्दों को संस्कृत रूप में अपनी कविता में रखा है । यथा तिग्रिस, युफ्रेट्स नामक नदियों को उन्होंने तिग्रा और सुप्रासु नदियां कहा है, बोनियो को बर्हिणी, मंगोलो को मंगल, फारसियों को पर्शु, बोड् अथवा तिब्बतियों को भोट, एवंच अर्शिक, असिक् अथवा अनुशिह् के लिये ऋषीक शब्द का प्रयोग डा. साहब ने किया है । संस्कृत के दिग्विजय की कहानी का प्रारम्भ डा. साहब ने मध्य एशिया (सिन्कियांग) में आर्यों की मूल भूमि से किया है । उस मूल भूमि से चलकर वे कौकस (कौकेसस) पर्वत को पार कर तिग्रिस् और यूफ्रेटस नदियों के मध्य स्थित स्थान में पहुँचे जहां उन्होंने असीरियन और बैबेरियन लोगों से अनेक कलाएं सीखीं । आर्यों की पूर्ववैदिक काल की उस वाणी ने ही भारतवर्ष में पहुंच कर संस्कृत रूप

ग्रहण किया। निषाद (आस्ट्रिक, कोल आदि जातियां), द्रमिड (द्रविड) एवं किरात (मोंगलॉयड, अथवा चीनी-तिब्बती) लोगों ने इसे समृद्ध किया और यह देव भाषा बन गई :--

निषादैर्द्रमिडैश्चापि किरातैः परिवर्धिता ।
सा संस्कृताभिधा भाषा देवभाषापदे गता ।।

अनेक विद्याओं और साहित्य कलाओं का वह माध्यम बनी और सब भाषाओं के मध्य उसे चक्रवर्तिपद प्राप्त हुआ :—

मण्डले सर्वभाषाणामासीद्या चक्रवर्तिनी ।

बाल्मीकि और व्यास की कीर्ति उसकी शीर्षस्थ हुई, अनेक ऋषियों ने उसे अपनाया। योगी, भक्त, आचार्य, और पण्डितों ने उसे अमरत्व प्रदान किया। भारतीय संस्कृति की प्रवाहिका बन वह ऋषि-महर्षियों, बुद्ध और जिन के आचार की समस्त विद्वानों में प्रचारिका बनी और सिंहल (सीलोन), कम्बुज (कम्बोडिया), चम्पा (चम् देश) रामण्य देश (मेञ् अथवा मोन लोगों के देश), श्याम देश, ब्रह्म देश, बोर्नियो देश, स्वर्ण द्वीप, यवद्वीप, बालि द्वीप आदि में प्रचारित हुई। आज भी श्यामादि देशों में पूजा की वही पुरानी पद्धति देखी जाती है। मध्य एशिया में आर्य भाषा भाषी जो आर्य थे उन्हों ने कुस्तन (खोतन) नगर की स्थापना की थी जहां वे रहने लगे थे। एकमेव शक, (सुलिक), (सोग्द्यिन), ऋषीक, भोट, तुरुष्क, मंगल, कोरियन, महाचीनी और यमतावंशज (जापानी) लोगों ने इस भाषा का आदर किया। यवनों ने ज्योतिषादि से इसे अलंकृत किया, अरबों और पारसियों ने गणित, ज्योतिष, कथा कहानियों, वैद्यक एवं आध्यात्मिक ज्ञान से इसे समृद्ध किया :-

आरब्यपारसीकेषु मानिता ज्ञानदामिनी ।
गणितं ज्यौतिषं शास्त्रमाख्यानं वैद्यकं तथा ।।
तेभ्य एतानि दत्तानि ज्ञानं चाध्यात्मिकं मुदा ।

इसके पश्चात डा. चाटुर्ज्या ने कहा है कि यदि पाश्चात्य देश एवंच पाताल (अमेरिका) इस वाणी को अपना लें, तो वह कालोपयोगिनी होगी और योग क्षेम, सत्य एवं शाश्वत की सिद्धि का निमित्त बनेगी। कविता के अन्तिम श्लोक में डा. चाटुर्ज्या ने यह कामना की है कि समस्त जनों की हित एवं इष्टसाधिका यह भारतीय भाषा सदा कल्याणवर्धिनी हो :—

समग्रजनजातीनाँ हितप्रियविधायिनी ।

गीरियं भारतीया सा सदास्तु स्वस्तिवर्षिणी ॥

भाषाविद् डा. चाटुर्ज्या के समान ही कवि डा. चाटुर्ज्या का रूप भी अत्यन्त प्रशस्त है। उनकी पदशय्या मनमोहक है, शैली सरल है, भाषा सरस है। उन्होंने अपने श्लोकों के माध्यम से 'भारती गी:' संस्कृत भाषा की अपूर्व श्रीवृद्धि की है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा के आगे समस्त विश्व नतमस्तक है।

अनुवाद की दिशा में डॉ० राघवन् का योगदान

डॉ० सत्यव्रत

आज के युग के महान् साहित्यसाधक एवं प्रखर आलोचक डॉ० वे० राघवन् की साहित्य को देन सर्वथा अपूर्व है। अठत्तर ग्रन्थों और सात सौ तीस से भी अधिक शोध निबन्धों के लेखक इस महामानव ने भारत की कीर्तिपताका चारों दिशाओं में फहरायी है। आलोचक के रूप में तो ये विख्यात हैं ही। इनके 'भोज'ज शृंगार प्रकाश', 'दि नम्बर ऑफ़ रसज़', 'सम कान्सेप्स्ट ऑफ़ अलंकारशास्त्र' आदि ग्रन्थ विद्वत्समाज में सुतरां समादृत हुए हैं। इनकी 'न्यू कैटेलोगस कैटलोगरम्' की महती योजना भी भारतीय वैदुष्य के लिए बहुमान का विषय है। पर ये केवल आलोचक ही नहीं, साहित्यकार भी हैं। संस्कृत और तमिल में नाना मौलिक ग्रन्थों की रचना भी इन्होंने की है। कर्नाटक संगीत के महान् आचार्य मुत्तुस्वामी दीक्षितर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर रचित इनके अमर महाकाव्य 'मुत्तुस्वामिदीक्षितचरितम्' के सौन्दर्य पर अभिभूत होकर कामकोटिपीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य ने इन्हें 'कविकोकिल' की उपाधि से सम्मानित किया है। इसके अतिरिक्त अनेक खण्डकाव्यों की रचना भी इन्होंने की है। किञ्च अनेक भाषाओं की अनेक कृतियों का इन्होंने भाषान्तर या अनुवाद भी किया है। ये प्रख्यात नाटककार भी हैं। अब तक इन्होंने बारह नाटक लिखे हैं, जिनमें सात अभिनीत और प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी बहुमुखी प्रतिभा ने इन्हें अपूर्व ख्याति प्रदान की है। ये आलोचक हैं और कवि भी, नाटककार हैं और अनुवादक भी, प्राचीन शास्त्रों के व्याख्याता हैं और नवीन चिन्तनधारा के प्रतिनिधि भी। इसमें क्या आश्चर्य कि इन विभिन्न तत्त्वों के सम्मिश्रण से बना इनका व्यक्तित्व वर्तमान युग के लिए एक आश्चर्य की वस्तु बन गया है।

शायद बहुत कम लोगों को यह ज्ञात होगा कि डॉ० राघवन् के लेखक-जीवन का आरम्भ ही अनुवाद कार्य से हुआ था। उनके सर्वप्रथम तीन ग्रन्थ अनूदित ग्रन्थ ही थे। 1934 से 1936 तक प्रतिवर्ष उनका एक-एक अनुवाद ग्रन्थ प्रकाशित होता रहा था। 1934 में महाभारत के संक्षिप्त संस्करण का अंग्रेज़ी अनुवाद, 1935 में भागवत के संक्षिप्त संस्करण का अंग्रेजी अनुवाद और 1936 में संस्कृत स्तोत्रों, प्रार्थनाओं आदि का अंग्रेज़ी अनुवाद। ये तीनों अनुवाद ग्रन्थ जी० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास के द्वारा प्रकाशित किये गये थे।

डॉ० राघवन् के अनुवाद कार्य को आठ भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) अंग्रेज़ी से तमिल में अनुवाद, (2) तमिल से अंग्रेज़ी में अनुवाद, (3) तमिल से संस्कृत में अनुवाद, (4) संस्कृत से तमिल में अनुवाद, (5) तेलुगु से अंग्रेज़ी में अनुवाद, (6) संस्कृत से अंग्रेज़ी में अनुवाद, (7) अंग्रेज़ी से संस्कृत में अनुवाद,

समग्रजनजातीनाँ हितप्रियविधायिनी ।

गीरियं भारतीया सा सदास्तु स्वस्तिवर्धिनी ॥

भाषाविद् डा. चाटुर्ज्या के समान ही कवि डा. चाटुर्ज्या का रूप भी अत्यन्त प्रशस्त है। उनकी पदशय्या मनमोहक है, शैली सरल है, भाषा सरस है। उन्होंने अपने श्लोकों के माध्यम से 'भारती गी:' संस्कृत भाषा की अपूर्व श्रीवृद्धि की है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा के आगे समस्त विश्व नतमस्तक है।

अनुवाद की दिशा में डॉ० राघवन् का योगदान

डॉ० सत्यव्रत

आज के युग के महान् साहित्यसाधक एवं प्रखर आलोचक डॉ० वे० राघवन् की साहित्य को देन सर्वथा अपूर्व है। अठत्तर ग्रन्थों और सात सौ तीस से भी अधिक शोध निबन्धों के लेखक इस महामानव ने भारत की कीर्तिपताका चारों दिशाओं में फहरायी है। आलोचक के रूप में तो ये विख्यात हैं ही। इनके 'भोज'ज शृंगार प्रकाश', 'दि नम्बर ऑफ़ रसज', 'सम कान्सेप्ट्स ऑफ़ अलंकारशास्त्र' आदि ग्रन्थ विद्वत्समाज में सुतरां समादृत हुए हैं। इनकी 'न्यू कैटेलोगस कैटलोगरम्' की महती योजना भी भारतीय वैदुष्य के लिए बहुमान का विषय है। पर ये केवल आलोचक ही नहीं, साहित्यकार भी हैं। संस्कृत और तमिल में नाना मौलिक ग्रन्थों की रचना भी इन्होंने की है। कर्नाटक संगीत के महान् आचार्य मुत्तुस्वामी दीक्षितर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर रचित इनके अमर महाकाव्य 'मुत्तुस्वामिदीक्षितचरितम्' के सौन्दर्य पर अभिभूत होकर कामकोटिपीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य ने इन्हें 'कविकोकिल' की उपाधि से सम्मानित किया है। इसके अतिरिक्त अनेक खण्डकाव्यों की रचना भी इन्होंने की है। किञ्च अनेक भाषाओं की अनेक कृतियों का इन्होंने भाषान्तर या अनुवाद भी किया है। ये प्रख्यात नाटककार भी हैं। अब तक इन्होंने बारह नाटक लिखे हैं, जिनमें सात अभिनीत और प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी बहुमुखी प्रतिभा ने इन्हें अपूर्व ख्याति प्रदान की है। ये आलोचक हैं और कवि भी, नाटककार हैं और अनुवादक भी, प्राचीन शास्त्रों के व्याख्याता हैं और नवीन चिन्तनधारा के प्रतिनिधि भी। इसमें क्या आश्चर्य कि इन विभिन्न तत्त्वों के सम्मिश्रण से बना इनका व्यक्तित्व वर्तमान युग के लिए एक आश्चर्य की वस्तु बन गया है।

शायद बहुत कम लोगों को यह ज्ञात होगा कि डॉ० राघवन् के लेखक-जीवन का आरम्भ ही अनुवाद कार्य से हुआ था। उनके सर्वप्रथम तीन ग्रन्थ अनूदित ग्रन्थ ही थे। 1934 से 1936 तक प्रतिवर्ष उनका एक-एक अनुवाद ग्रन्थ प्रकाशित होता रहा था। 1934 में महाभारत के संक्षिप्त संस्करण का अंग्रेज़ी अनुवाद, 1935 में भागवत के संक्षिप्त संस्करण का अंग्रेज़ी अनुवाद और 1936 में संस्कृत स्तोत्रों, प्रार्थनाओं आदि का अंग्रेज़ी अनुवाद। ये तीनों अनुवाद ग्रन्थ जी० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास के द्वारा प्रकाशित किये गये थे।

डॉ० राघवन् के अनुवाद कार्य को आठ भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) अंग्रेज़ी से तमिल में अनुवाद, (2) तमिल से अंग्रेज़ी में अनुवाद, (3) तमिल से संस्कृत में अनुवाद, (4) संस्कृत से तमिल में अनुवाद, (5) तेलुगु से अंग्रेजी में अनुवाद, (6) संस्कृत से अंग्रेजी में अनुवाद, (7) अंग्रेज़ी से संस्कृत में अनुवाद,

(8) बंगला से संस्कृत में अनुवाद ।

डॉ० राघवन् तमिल के बहुत अच्छे लेखक हैं। इन्होंने मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त अनुवादों से भी उसके साहित्य की श्रीवृद्धि की है। अंग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध लेखक और कहानीकार और कुछ समय के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट के सचिव मंजेरी एस् ईश्वरन् की अनेक लघुकथाएँ डॉ० राघवन् ने तमिल में अनूदित की हैं जोकि समय-समय पर तमिल पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय चित्रकला, वास्तुकला आदि विभिन्न विषयों के अनेक रोचक और ज्ञानवर्धक अंग्रेज़ी लेखों का भी डॉ० राघवन् ने अनुवाद किया है, जो कि कलइमखम्, शिल्पश्री आदि तमिल पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा है।

डॉ० राघवन् ने दिसम्बर 1964 में 'एकता के महान् पुजारी—भारत के सन्त कवि' (The Great Integrators : Saint-Singers of India) विषय पर पटेल स्मारक भाषण (Patel Memorial Lectures) दिये थे जोकि 1966 में भारत सरकार के प्रकाशन विभाग की ओर से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए थे। इस पुस्तक के अन्त में एक सुभाषितावलि (Anthology) दी गई है, जिसमें अनेक तमिल स्तोत्र-कारों और सन्त त्यागराज के सुभाषितों का अंग्रेज़ी में अनुवाद दिया गया है।

डॉ० राघवन् ने तमिल से संस्कृत में अनुवाद कार्य भी किया है। उन्होंने तमिल राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्य भारती की कतिपय रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद प्रस्तुत कर संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की है। उनके द्वारा अनूदित अश्वशृंगादि प्रहसन समय-समय पर भारतवाणी आदि संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।

डॉ० राघवन् के संस्कृत से तमिल में अनुवाद कार्य की दिशा में विशेष उल्लेखनीय है उनका कथासरित्सागर के कतिपय भागों का तमिल अनुवाद जिसे सदर्न लैंग्विजिज बुक ट्रस्ट ने प्रकाशित किया है।[1] डॉ० राघवन् पिछले कई वर्षों से कथासरित्सागर के तमिल अनुवाद पर कार्य करते आ रहे हैं। इसके कतिपय अनूदित अंश क्रमशः तमिल पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुके हैं। डॉ० राघवन् का संकल्प सम्पूर्ण कथासरित्सागर को तमिल में प्रस्तुत करने का है। निश्चय ही यह अपने ढंग का पहला एवं महान् कार्य होगा। इसी महान् कार्य की कोटि का एक अन्य महान् कार्य जो डॉ० राघवन् ने किया है वह है उनका भास के दूतवाक्य,[2] मध्यम-व्यायोग[3] और दूतघटोत्कच[4] एवं महेन्द्र विक्रम के भगवदज्जुकीय[5] का तमिल में अनुवाद।

---

[1] इसी अनुवाद के आधार पर सदर्न लैंग्विजिज बुक ट्रस्ट ने कथासरित्सागर की कतिपय कथाओं का तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में अनुवाद प्रकाशित किया है।

[2] 'संस्कृत रंग एनुअल', संख्या 5, 1967 में प्रकाशित।

[3,4] मद्रास नाट्य शिक्षण केन्द्र के विद्यार्थियों द्वारा क्रमशः 29 दिसम्बर, 1965 और 23 अगस्त 1968 को अभिनीत। अद्यावधि अप्रकाशित।

[5] भारतीय नाट्यसङ्घ के वार्षिक समारोह में हैदराबाद में 6 फरवरी, 1966 को अभिनीत। 'संस्कृत रंग एनुअल,' संख्या 5, 1967 में प्रकाशित।

इन महान् कार्यों के अतिरिक्त डॉ० राघवन् ने अनेक लघु कार्य भी किये हैं। नाना संस्कृत स्तोत्रों, सुभाषितों और शंकराचार्य के पद्यादिकों का भी तमिल में अनुवाद उन्होंने किया है जो कि समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।

1966 में डॉ० राघवन् का त्यागराज का आध्यात्मिक दाय (Spiritual Heritage of Tyagaraja) शीर्षक ग्रन्थ मद्रास से प्रकाशित हुआ था। इसमें डॉक्टर साहब ने त्यागराज के 600 तेलुगु गीत देवनागरी लिपि में अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ प्रकाशित किये हैं। पूर्वोल्लिखित 'एकता के महान् पुजारी—भारत के सन्त कवि' (पटेल स्मारक भाषण) के अन्त में दी गई सुभाषितावलि में तमिल सुभाषितों के अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ-साथ कतिपय तेलुगु सुभाषितों का अंग्रेज़ी अनुवाद भी इन्होंने दिया है।

1958 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय (न्यूयार्क) ने डॉ० राघवन् का एक ग्रन्थ भारतीय परम्परा के मूलस्रोत (Sources of Indian Tradition) प्रकाशित किया था। इस ग्रन्थ में लगभग 100 पृष्ठों में हिन्दू धर्म और दर्शन पर मूल संस्कृत ग्रन्थों में पाये जाने वाले अनेक सन्दर्भों का अनुवाद डॉ० राघवन् ने अंग्रेज़ी में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक (Sources of Indian Tradition) पर उन्हें वाटुमल पुरस्कार (Watumall Award) प्राप्त हुआ था जो कि अमेरिका में भारतीय प्रकाशन पर दिया जाने वाला प्रथम पुरस्कार था। यूनेस्को के 1955 में नई दिल्ली में हुए प्रथम अधिवेशन के अवसर पर यूनेस्को द्वारा पूर्व और पश्चिम के देशों की परस्पर जानकारी बढ़ाने एवं उनके आदर्श ग्रन्थों के अनुवाद की योजना के अन्तर्गत 'भारतीय दाय' (The Indian Heritage) शीर्षक से बंगलोर के इण्डियन इन्स्टिट्यूट ऑफ़ वर्ल्ड कल्चर (Indian Institute of World Culture) द्वारा प्रकाशित एक अन्य ग्रन्थ में भी डॉ० राघवन् ने विशिष्ट संस्कृत ग्रन्थों (वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि) से चुने हुए सन्दर्भों का अंग्रेज़ी में अनुवाद प्रस्तुत किया है। इसका प्राक्कथन भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा था। इसके अतिरिक्त डॉ० राघवन् ने तथा डॉ० माइल्स् डिल्लोन् ने मिलकर सागरनन्दी के नाटकलक्षणरत्नकोष का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है जोकि अमेरिकन फिलोसोफिकल सोसाइटी, फिलाडेल्फिया, ने प्रकाशित किया है।

अंग्रेज़ी से संस्कृत में अनुवाद की दिशा में डॉ० राघवन् का योगदान विशेष उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अंग्रेज़ी की दो सुप्रसिद्ध कविताओं और एक स्पेनी भाषा की कटिल्लिय विभाषा में मूलतः लिखित पर बाद में अंग्रेज़ी में अनूदित कविता का संस्कृतानुवाद किया है। अनुवाद भी ऐसा कि अनुवाद लगता ही नहीं। अनुवाद में से मूल नहीं झाँकता, वह मूल की ही प्रतीति देता है। अनुवादक स्वयं में कवि हैं इसलिए इनके लिए ऐसा अनुवाद करना सम्भव हो पाया है। इन दो कविताओं में पहिली सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि कीट्स की 'ल बेल् दाम्स् साम्स् मर्सी' है और दूसरी सुप्रसिद्ध स्पेनी कवि होज़े रिज़ल् की 'मास्टीरियोर् एडियोस्'। डॉ०

राघवन् ने संस्कृत में इनके शीर्षक क्रमश: 'निर्दया देवी'[1] और 'अन्तिममामन्त्रणम्'[2] दिये हैं। नीचे 'ल बेल् दाम्स् साम्स् मर्सी' के तीन मूल अंग्रेजी पद्य संस्कृतानुवाद के साथ दिये जा रहे हैं। इन्हे देख पाठकगण स्वयं निर्णय कर सकेंगे कि अनुवाद कितना उत्कृष्ट कोटि का है—

I met a lady in the Meads
    Full beautiful—A fairy's child,
Her hair was long, her foot was light.
    And her eyes were wild.
शाद्वलभूमिषु कामपि
    फुल्लश्रियमापमप्सर:प्रभवाम् ।
आयतकबरभरां लघुचरणा=
    मुद्भ्रान्तलोचनद्वन्द्वाम् ॥
She found me roots of relish sweet,
    And honey wild and manna dew,
And sure in language strange she said
    "I love thee true"
कन्दं स्वादु ददौ मे
    गिरिमधु फलचित्रसरसपाकांश्च ।
चित्रगिरा स्फुटमवदत्
    सत्यं त्वां कामयेऽहमिति ॥
And there she lulled me asleep,
    And there I dreamed—Ah ! Woe betide !
The latest dream I ever dreamt
    On the cold hillside.
तल्लालनेन सुप्त:
    तत्राहं स्वप्नमेकमद्राक्षम् ।
शिशिरे दुर्गनितम्बे
    धिक् ! चरम: स्वप्न आसीन् मे ॥

'पोस्टीरियोर् एडिओस्', 'चरममामन्त्रणम्', फिलिपीन्स के प्रमुख देशभक्त लेखक होज़े रिज़ल् की रचना है। श्री होज़े रिज़ल् का जन्म फिलिपीन्स की राजधानी मनीला से कुछ दूर कलम्ब नामक नगर में हुआ था। उन दिनों यह देश स्पेन के अधीन था। स्पेन में ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। पर उनके मन में अपने देश के प्रति अगाध प्रेम था, इसे स्वतन्त्र देखने की ललक थी। स्वदेश प्रेम से प्रेरित होकर ही उन्होंने 'नोलि

---

1. संस्कृत प्रतिभा, पंचम उन्मेष, प्रथम विलास, 1965, पृ० 72-73 ।
2. वही, द्वितीय उन्मेष, प्रथम विलास, 1966, पृष्ठ 148-152 ।

मे तेंगेरे' (Noli me Tengere) नामक कहानी लिखी जिसमें स्पेनिश अत्याचार का विशद वर्णन था । 1889-1891 तक इन्होंने जो विविध साहित्य रचा उसमें स्वदेश को स्वतन्त्र कराने की पुकार थी । 1891 में उन्होंने अपनी दूसरी कहानी 'रेन ऑफ़ ग्रीड' (Reign of Greed) प्रकाशित की जिसमें स्पेनी शासन की कड़ी आलोचना की गई थी । स्पेनी प्रशासन इसे सह न सका । श्री रिज़ेल पर राजद्रोह का दण्ड लगाकर उन्हें बन्दी बना लिया गया और देश-निकाला दे दिया गया । 1896 में जनता को स्पेनी शासन के विरुद्ध भड़काने का आरोप लगाकर उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया । 30 दिसम्बर, 1896 को प्रातः सात बजे कलम्ब नामक स्थान में उन्हें गोली से उड़ा दिया गया । 29 दिसम्बर की उस रात को, जो उनके जीवन की अन्तिम रात थी, वे निरन्तर लिखते रहे । 'अन्तिममामन्त्रणम्' मरने से छः घण्टे पूर्व की उनकी रचना है । इसमें उन्होंने अपने देशवासियों से विदाई ली है । रचना बहुत मार्मिक बन पड़ी है । नाना भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है । संस्कृत में इसका प्रथम अनुवाद डॉ० राघवन् ने किया है । मूल कविता में प्रत्येक पद्य में पाँच पंक्तियाँ हैं । संस्कृत पद्यानुवाद में पाँच पंक्तियों का छन्द सम्भव न था । डॉ० राघवन् ने इस कठिनाई को वसन्ततिलका पद्य के साथ एक अनुष्टुभ् पद्य को जोड़कर दूर किया है । डॉ० राघवन् का अनुवाद अंग्रेज़ी अनुवाद पर आधारित है । यह उस अनुवाद से किसी भी तरह कम नहीं, कहीं-कहीं तो भाव-प्रवणता में उससे भी आगे बढ़ जाता है । तुलना के लिए कतिपय पद्यों के अंग्रेज़ी और संस्कृतानुवाद नीचे दिये जा रहे हैं—

Farewell, dear fatherland, clime of the sun caress'd,
Pearl of the orient seas, our Eden lost !
Gladly now I go to give thee this faded life's best
And were it brighter, fresher, or more blest,
Still would I give it thee, nor count the cost.
स्वस्त्यस्तु पूज्यजननोर्वि रविप्रियोर्वि
प्राच्याब्धिमौक्तिकमणे मुषितद्यु भूमे ।
तुभ्यं विषादमयमप्यतिहर्षतोऽह-
मेतन्मदीयमिह जीवितमर्पयामि ॥
यदीदं जीवितमितोऽप्यभविष्यत्समुज्ज्वलम् ।
फुल्लमम्लानमेवं चाप्यदास्यं श्रेयसे तव ॥
If over my grave some day thou seest grow,
In the grassy sod, a humble flower,
Draw it to thy lips and kiss my soul so,
While I feel on my brow in the cold tomb below
The touch of thy tenderness, thy breath's warm power.
चैत्ये मम प्रकटगुल्मघनान्तरोप-
रूढं कदाचिदवलोकयसे यदि त्वम् ।

किंचित्सुफल्गु कुसुमं, नय तत्त्वदोष्ठ-
मात्मानमेवमपि मे परिचुम्ब मातः ॥
एवमत्रातिशिशिरे चैत्ये प्रस्वपता मया।
भालदेशेऽनुभूयेरन् श्वासास्ते कोष्णकोमलाः ॥

My Fatherland adored, that sadness to my sorrow lends,
Beloved Filipinas, hear now my last good-bye;
I give thee all parents and kindred and friends;
For I go where no slave before the oppressor bends,
Where faith can never kill, and God reigns e'er on high !

पूज्ये ममोद्भवधरित्रि मदीयशोक-
सारायिते फिलिपिना दयिते शृणु, त्वाम् ।
आमन्त्रयेऽद्य वचनं चरमं ममेदं
त्यक्तास्त्वयि प्रियजनाः पितरश्च तत्र ॥
यत्र सन्ति न दासा वा घातुकाः क्रूरशासकाः ।
श्रद्धा न मृतये, देवः शास्ता, तत्र व्रजाम्यहम् ॥

डॉ० राघवन् की 'मधुगाथा'[1] नामक एक कविता अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि ग्रे की 'ओड् आन् दि स्प्रिंग' पर आधारित है। ग्रे के आशय को डॉक्टर साहब ने संस्कृत के माध्यम से अत्यन्त रसमय ढंग से अभिव्यक्त किया है। प्रमाण के लिए नीचे उद्धृत किये जा रहे कतिपय अंग्रेजी और संस्कृत के पद्य पर्याप्त रहेंगे—

The Attic warbler pours her throat
Responsive to the cuckoo's note,
The untaught harmony of spring,
While, whispering pleasure as they fly,
Cool Zephyrs through the clear blue sky
Their gather'd fragrance fling.

माकन्दकन्दलरसान्धपिकोऽत्र कूज-
त्युन्मादकाकलिकलापमयं वनान्ते ।
कीराङ्गनाललितचाटुवचश्च तेन
साहित्यवद् सहृदयोन्मदनं समेति ॥
उत्फुल्लसान्द्रमकरन्दभृतप्रसून-
सौरभ्यमाकिरति दिक्षु सरोऽम्बुशीतः ।
मन्दानिलोऽत्र मलयद्रुमगन्धवाहः
कर्णान्तिके मदनमन्त्रजपं प्रकुर्वन् ॥

कहीं-कहीं डॉ० राघवन् ग्रे से भी बढ़ गये हैं। ग्रे की अपेक्षा इनकी कविता कहीं

---

[1] संस्कृत प्रतिभा, पञ्चम उन्मेष, द्वितीय विलास, 1965, पृ० 223-225.

अधिक सरस एवं काव्यमय बन पड़ी है। प्रमाण के लिए ग्रे की निम्नलिखित पंक्तियाँ—

Beside some waters rushing brink
With me the muse shall sit and think
(At ease reclined in rustic state)

और डॉ० राघवन् की निम्नलिखित पंक्तियाँ—

कासारतीरभुवि पद्मबिसाशहंस-
कूजार्पितश्रुतिगवोज्झितघासपाल्याम्।
चिन्तोपगूहनरसेन सुखं शयान
एषोऽत्र दीर्घमनने मन आदधामि॥

उपस्थित की जा सकती हैं।

डॉ० राघवन् की एक रचना जो अंशतः अनुवाद भी है और मौलिक भी 'टाल्स्टाय् हरिल्लगुडश्च' है।[1] 1958 में डॉ० साहब रूस की यात्रा पर थे। इसी यात्रा के दौरान 5 अक्तूबर को वे टाल्स्टाय के जन्म-स्थान एस्नयपोल्या में गये। वहाँ उन्होंने टाल्स्टाय का चैत्य देखा। उसके पास ही एक अभिलेख भी उनकी दृष्टि में आया जिसमें नन्हीं हरी छड़ी की कथा अंकित थी। टाल्स्टाय का भाई निकोलस बचपन में उनसे एक ऐसी नन्ही हरी छड़ी की चर्चा किया करता था जिस पर मनुष्य की सब बुराइयों को दूर करने वाला सन्देश अंकित है। उसका कथन था कि वह अद्भुत नन्हीं छड़ी एक ऊँचे स्थान के पास की एक कन्दरा के किनारे दबी पड़ी है। उस पर लिखा है कि जो किसी से क्रोध अथवा कलह नहीं करते वे सुखी रहते हैं। भाई के द्वारा बताई हुई छोटी-सी हरी छड़ी की यह बात टाल्स्टाय के मन में घर कर गई थी और जब से भाई ने पहले-पहल उन्हें यह बात बताई थी तभी से उन्हें एक ऐसा मार्ग खोजने की धुन सवार हो गई थी जिससे मनुष्य एक-दूसरे के साथ भाई-भाई की तरह प्रेमपूर्वक रह सकें। डॉ० राघवन् इस अभिलेख को पढ़कर अत्यधिक प्रभावित हुए और वहीं पर हाथ-के-हाथ उन्होंने वसन्ततिलका छन्द में तीन पद्यों की रचना कर डाली। भाई निकोलस ने टाल्स्टाय को नन्ही हरी छड़ी के विषय में जो कहा था उसे डॉ० राघवन् ने इन शब्दों में उपस्थित किया है—

मालस्य कस्यचन कुत्रचनास्ति पार्श्वे
गूढोऽद्भुतो लघुहरिल्लगुडो हि कोऽपि।
लभ्येत चेत्स भविता सकलः सुखीह
कश्चिन्न कुप्यति न वा कलहायतेऽन्यैः॥

अन्तिम पद्य में डॉ० राघवन् ने टाल्स्टाय को सम्बोधित करते हुए कहा है कि यह कहानी बचपन में आपके बड़े भाई ने आपको सुनाई थी। जिस नन्हीं हरी छड़ी के विषय में उन्होंने कहा था कौन जाने वह है भी या नहीं। परन्तु जो बात

---

[1] संस्कृत प्रतिभा, [illegible] प्रथम विलास, 1959, पृ० 35.

उस पर लिखी थी वह आपमें थी। आपका वाङ्मय जनकल्याण के लिए प्रवाहित हुआ था—

इत्थं कथामकथयत्तव शैशवे ते
ज्येष्ठः, स तादृशहरिल्लगुडोऽस्तु मा वा।
मन्ये तथाविधगुणं तु भवन्तमेव
यद्वाङ्मयं प्रवहति स्म जनस्य शान्त्यै ॥

कविताओं के साथ-साथ गद्य रचनाओं का भी डॉ० राघवन् ने संस्कृतानुवाद किया है। इसमें प्रमुख है आज़ाद स्मारक भाषणमाला के अन्तर्गत पं० जवाहरलाल नेहरू का भाषण—'India Today and Tomorrow', 'भारत आज और कल'—जिसका अनुवाद डॉ० राघवन् ने 'भारतमद्यतनं श्वस्तनं च'[1] शीर्षक से किया है। पं० नेहरू की ओजस्विनी वाणी के संस्कृत रूपान्तरण में डॉ० राघवन् बहुत सफल हुए हैं। उदाहरण के लिए नीचे कतिपय मूल अंग्रेज़ी सन्दर्भ संस्कृतरूपान्तर के साथ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

"What is India ? That is a question which has come back again and again to my mind and in my amateurish way I saught to reply to it in her past and the present. The early beginnings of our history filled me with wonder. It was the past of a virile and vigorous race with a questing spirit, an urge for free enquiry and even in its earliest known period, giving evidence of a mature and tolerant civilization."

कोऽयं भारतो नाम देशः ? प्रश्नोऽयं पुनः पुनर्मे मनस्युदेति। मदीययैव अशिक्षितया रीत्या अस्य प्रश्नस्योत्तरमहं देशस्यास्य प्राक्तन्यामद्यतन्यां च स्थित्यामन्वैच्छम्। अस्मच्चरित्रस्य ये प्रथमारम्भाः ते मामद्भुतरसेन परिपूरयन्ति। वीर्यवत्या बलवत्याश्च जनजातेस्स आसीत्कालः, यस्याश्च परिप्रश्नशील आत्मा या च विश्रृङ्खलया जिज्ञासया प्रेर्यमाणा बभूव, यस्याश्च चरित्रमतिप्राचीनायामपि दशायां कस्या अपि परिपक्वाया असूयाहीनायाः सम्भताया लक्षणानि व्यञ्जयामास।

"So in the tumult and confusion of our time we stand facing both ways. forward to the future and backwards to the past, being pulled in both directions. How can we resolve this conflict and evolve a structure of living which fulfills, our material needs and at the same time, sustains our mind and spirit ? What new ideas or old ideals, varied and adapted to the new world, can we place before our people, and how can we galvanize them into wakefulness and action."

---

[1] संस्कृतप्रतिभा, द्वितीय उन्मेष, द्वितीय विलास, 1960, पृ० 253-289.

अतश्च अस्मत्कालस्य प्रक्षोभव्यामोहाभ्यामुभयमुखा वयं तिष्ठामः, अग्रै भविष्यन्मुखाः, पश्चाच्च भूतमुखा उभयोरपि दिशोःकृष्यमाणाः । एतं च व्याघातं कथं शमयेम, कथं च कारणार्थं प्रक्रियां काञ्चन निष्पादयेम, ययाऽस्माकं न केवलं प्रापञ्चिकार्थाः पूर्येरन्, अपि त्वस्माकं मानसमात्मा च धार्येयाताम् ? कानि तानि प्रत्यग्राणि वा पुराणानि वा लक्ष्याणि यानि वैविध्यभाञ्जि नूतनप्रपञ्चौचित्येन ऊहितानि नो जनानां पुरत उपन्यस्येम ? कथं च ते जनाः सजागरा कर्मठाश्च यथा भवेयुः यथा तान् हठाद् व्यापारशालिनो विदध्याम ?

"Tomorrow's India will be what we make it by today's labours. I have no doubt that India will progress industrially and otherwise ; that she will advance in science and technology; that our people's standard will rise ; that education will spread and that health conditions will be better, and that art and culture will enrich people's lives. We have started on this pilgrimage with strong purpose and good heart and we shall reach the end of the journey, however long that might be."

यादृशमद्यतनपरिश्रमेण वयं कुर्मः तादृशमेव श्वस्तनं भारतं भविष्यति । व्यापारोद्योगे अन्यथा च भारतमभिवृद्धिमुपैष्यति, विज्ञाने यन्त्रे च तत् प्रगतिं यास्यति, अस्मज्जनानां जीवितप्रकारस्य मात्रा उन्नतिमेष्यति, विद्या प्रसरिष्यति, आरोग्यविषया परिस्थितयो गुणवत्तरा भविष्यन्ति, कला संस्कृतिश्च जनजीवितानि धन्यानि करिष्यन्ति इत्यत्र न मे विशयः । दृढेनोद्देशेन, साधुना हृदयेन च वयमस्यै यात्रायै प्रस्थिताः, यात्रापूर्तिं वा प्राप्नुमः, यावद्वा तद्दैर्घ्यं भवतु ।

डॉ० राघवन् की अनूदित गद्य रचनाओं में 'अण्ड-प्रमाणकं धान्यम्'[1] शीर्षक से सुप्रसिद्ध रूसी लेखक टालस्टाय की एक लघु कथा 'A grain as Big as a Hen's Egg' के अनुवाद का भी उल्लेख किया जा सकता है । प्रस्तुत संस्कृतानुवाद मूल रूसी कथा के अंग्रेज़ी अनुवाद पर आधारित है ।

अंग्रेजी के अथवा अन्य भाषाओं के ग्रन्थों को समय-समय पर पढ़ते-पढ़ते जो कुछेक पङ्क्तियाँ डॉ० राघवन् को बहुत रुचीं उनका अनुवाद उन्होंने 'अनुवादप्रकरः' शीर्षक से प्रकाशित किया है । इस सङ्ग्रह में कुल मिलाकर 31 छोटे-बड़े गद्य-पद्यमय सन्दर्भ हैं ।[2]

बंगला से संस्कृत अनुवाद की दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं डॉ० राघवन् द्वारा अनूदित कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत दो नाटक 'वाल्मीकिप्रतिभा'[3] और

---

[1] संस्कृत प्रतिभा, द्वितीय उन्मेष, प्रथम विलास, 1960, पृ० 153-156.

[2] संस्कृत प्रतिभा, तृतीय उन्मेष, द्वितीय विलास, 1961, पृ० 248-251.

[3] संस्कृत प्रतिभा (संस्कृतरवीन्द्रम्), षष्ठ उन्मेष, पृ० 203-251.

‘नटीपूजा’[4] (नटीर पूजा)। अनुवाद आश्चर्यजनक रूप से मूल के निकट है। भाषा अभिव्यंजना-शैली, सरसता इन सभी दृष्टियों से वह मूल की छायामात्र है। लगता है मानो टैगोर संस्कृत में बोल उठे हों।[5] उदाहरण के लिए निम्नलिखित कतिपय मूल बंगला सन्दर्भ एवञ्च उनके संस्कृत अनुवाद पर्याप्त रहेंगे—

1. बालिका—ओइ मेघ करे बुझि गगने
आंधार छाइल, रजनी आइल,
घरे फिरे आब केमने।
चरण अवश हाय, श्रान्तक्लान्त काय
सारा दिवस वनभ्रमणे
घरे फिरे आब के मने।

बालिका—हन्त मेघैरावृतं गगनम्। अन्धकारः प्रसृतः। रजनी आगता।
गृहं पुनर्यायां कथम्। चरणौ अवशौ जातौ। श्रान्तक्लान्तः
कायः। पूर्णो दिवसो वनभ्रमणेन। गृहं पुनर्यायां कथम्?

(2) वाल्मीकि—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥
की बलिनु आमि। ए की सुललित वाणी रे
किछु ना जानि केमने जे आमि प्रकाशिनु देवभाषा,
एमन कथा केमने शिखिनु रे।
पुलके पुरिल मन-प्राण, मधु वरीषल श्रवणे,
ए की। हृदये ए की ए देखि।
घोर अन्धकार माझे ए की ज्योतिमाय
अवाक्। करुणा ए कार।

वाल्मीकिः—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥
किमिदं व्याहृतं मया? केयं सुललिता वाणी।
किमपि न जाने, कथमहं प्रकाशितवानस्मि देवभाषाम्।
ईदृशीं भाषां कथमशिक्षे। पुलकेन पूरितं मनः प्राणश्च।
मधु वर्षति श्रवणयोः। केयं यां हृदये पश्यामि। घोरान्ध-
कारमध्ये किमिदं ज्योतिः? अवाक् करुणेयं कस्य?

---

[4] वही, पृ० 252-304.

[5] डॉ० राघवन् के इस अनुवाद पर मूर्धन्य साहित्यकार एवं आलोचक डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या एवं श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ मुग्ध हो उठे हैं। उन्होंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। देखिये डॉ० राघवन् की षष्ट्यब्दपूर्ति के उपलक्ष्य में उन्हीं द्वारा लिखित ‘अनारकली’ नामक रूपक के अभिनय के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका ग्रन्थ में ‘डॉ० राघवन्स कन्ट्रिब्यू[illegible]’ शीर्षक [illegible]

(3) सरस्वती—आमि वीणापाणि, तोरे एसेछि शिखाते गान ।
तोरे गाने गले जाबो सहस्र पाषाण प्राण ।
जे रागिणी शुने तोर गलेछे कठोर मन
से रागिणी तोरइ कण्ठे बाजिबे रे अनुक्षण ।
अधीर हइया सिन्धु कांदिबे चरणतले,
चारि दिके दिक्-वधू आकुल नयन जले,
माथार उपरे तोर कांदिबे सहस्र तारा,
अशनि गलिया गिया हइबे अश्रुर धारा ।
जे करुणरसे आजि डुबिल रे ओ हृदय
शतस्रोते तुइ ताहा ढालिबि जगतमय ।

सरस्वती—अहं वीणापाणिः, त्वदर्थमागता ।
शिक्षिष्यामि ते गानम् । तव गानेन
द्रवीभविष्यति पाषाणभूतं जीवितम् ।
यां रागिणीं श्रुत्वा ते द्रुतं कठोरं मनः, सा
रागिणी ते कण्ठे ध्वनिष्यति अनुक्षणम् ।
अधीरो भूत्वा सिन्धुः क्रन्दिष्यति ते चरणतले ।
चतसृषु दिक्षु दिग्वध्व आकुला नयनजलैः ।
मस्तकोपरि ते क्रन्दिष्यन्ति सहस्रं ताराः ।
अशनिर्द्रवीभविष्यति अश्रुधाराभिः । यस्मिन्करुणरसे
निमग्नं ते हृदयं शतस्रोतोभिः त्वमेव तं जगन्मयं यथा
तथा प्रवाहयिष्यसि ।

न केवल गद्य ही अपितु गीत और नृत्य-गीत भी उसी शैली में अनूदित किये गये हैं । नीचे दोनों के एक-एक निदर्शन प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

गीत का निदर्शन—

निशीथे की कजे गेल मने
की जानि की जानि ।
से की घुमे से कीजागरणे
की जानि की जानि ।।

निशीथे किमुक्त्वा रहस्स प्रयातः
न जानाम्यहं तत् न जानाम्यहं तत् ।
तदासीन्नु सुप्तौ तदासीन्नु बोधे
न जानाम्यहं तत् न जानाम्यहं तत् ।।

नृत्यगीत का निदर्शन—

ए की परम व्यथाय परान कांपाय,
कांपन वक्षे लागे
शान्तिसागरे ढेउ खेल जाय

सुन्दरताय जागे

हन्त व्यथा मे परमा कम्पः प्राणस्य हन्त मे ।
कम्पो मे वक्षसो हन्त किं वा सञ्जातमद्य मे ।।
खेलन्ति वीचयो हन्त शान्तिसागरवक्षसि ।
जागर्ति किमपीहाद्य सौन्दर्यमपि चाद्भुतम् ।।

डॉ० राघवन् का अनुवाद कार्य स्तर और परिमाण दोनों दृष्टियों से अत्युत्कृष्ट है । भिन्न-भिन्न भाषाओं के मूल को जिस ढंग से अन्य भिन्न-भिन्न भाषाओं में उन्होंने ढाला है उसके उदाहरण इतिहास में बहुत कम हैं । साहित्य की सभी विधाओं में उनकी अबाध गति है । उनके द्वारा अनूदित वाङ्मय के पर्यवेक्षण से अनुवादक के रूप में जो उनका चित्र उभरता है वह अत्यन्त भव्य है । अकेले अनुवाद के क्षेत्र में ही उनकी देन युग-युग तक के लिए उनका नाम अमर करने के लिए पर्याप्त है ।